ठाकुरु विकाणो, सामी हथि संतनि जे,
पासे रखियाईं प्रीति सां, मंदाई माणो,
सेवा करे सेवकु थी, परिची सभु पाणो,
लटिकी लुभाणो, भंवर जां भगति ते.

स्वयं भगवान भी सच्चे संतों से अत्यधिक प्रेम करते हैं, इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए सामी साहब कहते हैं, साक्षात् परमेश्वर अपने प्रिय संतों (भक्तों) के हाथों बिक गये हैं। परमेश्वर स्वयं ही प्रेम-भाव से अपने मन से बड़ाई (मान) निकाल कर संतों की सेवा करने लगे हैं। प्रभु स्वयं ही संतों की भक्ति पर मोहित होकर भँवरे/भ्रमर के समान फँस गये हैं।

ईश्वर के अस्तित्व में श्रद्धा, ईश्वर के मन में अपने भक्तों के लिए प्रेम, मनोकामना पूरी करने के संबंध में भक्तों का विश्वास एवं मोक्ष-मुक्ति- इन चार तत्त्वों पर भक्ति की आधारशिला टिकी रहती है। श्रीमद् भागवत और गीता में भक्ति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। परमेश्वर के 'निर्गुण' एवं 'सगुण' रूपों में से अपनी भक्ति-भावना प्रकट करने के लिए भक्तों को परमेश्वर का 'सगुण' रूप ही अधिक भाता है। गीता में भक्ति को अधिक महत्व दिया गया है। भक्ति-मार्ग में सब को भक्ति करने का अधिकार रहता है। श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ प्रकार बताये गये हैं, उन में 'दास्य' 'सख्य' और 'आत्मनिवेदन' मुख्य हैं। कीर्तन आदि मार्गों द्वारा भक्त अपने आराध्य देव के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करता है। परमेश्वर का 'दास' बन कर उन्हें अपना मित्र या सखा मान लेता है। अंत में आत्म-समर्पण कर ईश्वर के साथ एकता स्थापित कर लेता है। यही 'परा भक्ति' है इस प्रकार भक्ति में प्रेम-तत्त्व अनिवार्य है। ज्ञानी भक्त की दृष्टि से भक्त और परमेश्वर में कोई द्वैत-भाव होता ही नहीं है। आत्मानुभूति के स्तर पर ईश्वर और भक्त अथवा सगुण और निर्गुण का भेद नहीं होता ।

सामी साहब इसी प्रेममय भक्ति का वर्णन करते हैं, जहाँ परमेश्वर स्वयं अपने भक्तों द्वारा बिक गया है। भक्तों की भक्ति पर मोहित होकर अपना बड़प्पन बिसार कर भक्तों का हो गया है। स्वयं भगवान के शब्दों में-

हम भक्तनि के भक्त हमारे ।।

अर्थात् मैं भक्तों का हूँ और भक्त हमारे हैं अथवा मैं अपने भक्तों का भक्त हूँ। प्रभु स्वयं भक्त बन जाते हैं, अपने भक्तों के ही भक्त बन जाते हैं। सामी साहब के शब्दों में जैसे सूर्यविकासी कमल पर शाम के समय मोह और प्रेमवश भ्रमर बैठे जाने पर कमल मुँद जाने से भ्रमर फँस जाता है, वैसे प्रभु भी भक्तों के मोहजाल में फँस जाते हैं।

■